RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-1, दिसम्बर 2024 जनवरी फरवरी 2025

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रास्तो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 अंक - 1 दिसम्बर-2024, जनवरी-फरवरी-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

सांख्य दर्शन में कथा शिक्षण

डॉ. किरन भदेरिया

सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

सांख्य-दर्शन में कथा-शिक्षण पद्धति को समझने के लिए पहले यह जानना आवश्यक है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में ज्ञान केवल सूत्रों और तार्किक विवेचन के माध्यम से ही नहीं दिया गया, बल्कि कथा, उपाख्यान, संवाद और रूपक के माध्यम से भी समझाया गया। सांख्य-दर्शन अत्यन्त विश्लेषणात्मक और तर्कप्रधान दर्शन माना जाता है, परन्तु इसके गूढ़ सिद्धान्त—जैसे पुरुष और प्रकृति का भेद, गुणत्रय की क्रिया, कार्य-कारण संबंध, प्राकृत-परिणामवाद आदि—आम जन के लिए सीधे-सीधे ग्रहणीय नहीं थे। इसलिए प्राचीन शिक्षण परंपरा में इन दार्शनिक सूत्रों को कथा के रूप में प्रस्तुत किया जाता, ताकि साधारण मनुष्य भी जटिल दार्शनिक सत्य को सहज रूप से समझ सके।

वेदों में कथा-शैली का जो समृद्ध रूप मिलता है, वही आगे चलकर दर्शनों की शिक्षण पद्धति के लिए आधार बना। वेदों में देवों, ऋषियों और मनुष्यों की अनेक कथाएँ मिलती हैं, जिनका उद्देश्य केवल घटनाओं का उल्लेख करना नहीं है, बल्कि मानवीय चेतना के विभिन्न पक्षों को उभारना है। इन कथाओं में दो प्रकार के भाव प्रकट होते हैं—उज्ज्वल पक्ष और कृष्ण पक्ष। उज्ज्वल पक्ष में मनुष्य की शक्ति, उमंग, विजय, तेजस्विता और आत्म-निदर्शन का भाव मिलता है; जबकि कृष्ण पक्ष में उसके संघर्ष, त्रुटि, दुःख और दुर्बलता के प्रसंग मुखर होते हैं। इन दोनों पक्षों के माध्यम से जीवन का सम्पूर्ण यथार्थ प्रकट होता है, जिसके आधार पर दार्शनिक सत्य को और अधिक सजीव रूप में समझाया जा सकता है।

सांख्य-दर्शन में जब ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, प्रकृति के विकारों या पुरुष की साक्षीभाव स्थिति की चर्चा होती है, तो इन तथ्यों को प्रत्यक्ष और जीवंत रूप देने हेतु कथा-रूपक प्रयुक्त किए जाते थे। उदाहरण के लिए, प्रकृति की सृजनात्मक प्रवृत्ति को नारी-सृजन रूपक, या पुरुष के निष्क्रिय साक्षीभाव को दृष्टा के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार कथा मनुष्य के मन में चित्र बनाती है और अमूर्त दार्शनिक सिद्धान्तों को मूर्त रूप प्रदान करती है। यही कारण है कि सांख्य जैसे तर्कप्रधान दर्शन में भी कथा एक आवश्यक शिक्षण साधन बन जाती है।

वेदों में कथा की परंपरा केवल दैव-कथाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वे मनोवैज्ञानिक स्थिति का भी वर्णन करती हैं। कहीं देव अपनी श्रेष्ठता का गीत स्वयं गाते हैं, कहीं मनुष्य अपनी हीन दशा पर विलाप करता है। यह आत्मबोध की प्रक्रिया है, जिसमें मनुष्य अपने भीतर के दोनों पक्षों—बल और दुर्बलता, तेज और तम—का सामना करता है। सांख्य के गुणत्रय सिद्धांत को समझाने में यह शैली बहुत सहायक होती थी, क्योंकि रज, तम और सत—इन तीनों गुणों के प्रभाव को मानव-कथा के माध्यम से सहजता से व्यक्त किया जा सकता था।

इस प्रकार सांख्य-दर्शन में कथा-शिक्षण पद्धति का उद्देश्य यह था कि अमूर्त सिद्धांत केवल दार्शनिक

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

ग्रंथों में न रह जाएँ, बल्कि कथाओं के द्वारा उन्हें लोक-जीवन से जोड़ा जाए। कथा मन को छूती है, स्मरण में रहती है और जटिल सत्य को अनुभव-सिद्ध बनाती है। इसीलिए कथा और प्रवचन की यह पद्धति केवल वेदों में ही नहीं, बल्कि उपनिषदों, पुराणों, गीता और विभिन्न दर्शनों की व्याख्यान-परंपरा में निरंतर चली। सांख्य-दर्शन, अपनी विश्लेषणात्मक प्रकृति के बावजूद, इसी वेदपरंपरा को अपनाता है, जिससे उसका ज्ञान सरल, सहज और जीवन-संग्राह्य बन सके।

सांख्य-दर्शन में प्रकृति और पुरुष के संबंध को स्पष्ट करने के लिए अनेक रूपकों का प्रयोग किया गया है, जिससे जटिल सिद्धांत भी सरल और सुबोध बन जाते हैं। सांख्य के अनुसार प्रकृति अचेतन है, परंतु उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ चेतन पुरुष के सान्निध्य में ही सक्रिय होती हैं। इसे समझाने के लिए कहा गया है कि जैसे कोई भृत्य अपने स्वामी की एक बार मिली प्रेरणा से निरंतर कार्यरत रहता है, वैसे ही अचेतन प्रकृति पुरुष के कारण ही प्रवृत्त होती है। पुरुष स्वयं न तो करता है, न भोगता है, फिर भी उसका साक्षीमात्र अस्तित्व प्रकृति की संपूर्ण क्रिया-शक्ति को गति प्रदान करता है।

प्रकृति के कार्य के प्रभाव और मुक्त पुरुष की स्थिति को समझाने के लिए नर्तकी का सुंदर रूपक दिया गया है। एक नर्तकी सभा में निरंतर नृत्य करती रहती है। जब तक दर्शकों में उसके नृत्य को देखने की उत्सुकता रहती है, वे उससे जुड़े रहते हैं और उसके हर भाव को देखने में तत्पर होते हैं। परंतु जिस क्षण किसी दर्शक की तृप्ति हो जाती है और वह समझ लेता है कि नृत्य का रहस्य और उद्देश्य क्या है, वह सभा से उठकर चला जाता है और तब नर्तकी का आगे का नृत्य उसके लिए जैसे अस्तित्वहीन हो जाता है। सांख्य इसी प्रकार कहता है कि प्रकृति अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति में निरंतर सक्रिय रहती है, परंतु विवेक प्राप्त आत्मा के लिए वह अप्रभावी हो जाती है। मुक्त आत्मा प्रकृति के नृत्य को देख तो सकती है, पर उससे कोई संबंध नहीं रखती, क्योंकि उसका लक्ष्य पूरा हो चुका होता है।

इसी भाव को कुलवधू के लज्जा-रूपक से और अधिक सूक्ष्म रूप से व्यक्त किया गया है। कहा गया है कि जिस प्रकार कोई कुलवधू अपने दोष प्रकट हो जाने पर लज्जा के कारण अपने स्वामी के सामने आने का साहस नहीं करती, उसी प्रकार प्रकृति भी जब ज्ञानी पुरुष के सामने अपने वास्तविक स्वरूप—दु:खात्मकता, परिवर्तनशीलता और जड़ता—समेत प्रकट हो जाती है, तब वह मानो लज्जा से नत होकर उस पुरुष को प्रभावित करना बंद कर देती है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि प्रकृति का कार्य रुकता नहीं; उसकी प्रवृत्ति सदा चलती रहती है। परन्तु विवेकवान आत्मा के लिए उसका प्रभाव शून्य हो जाता है, क्योंकि वह अब जड़-प्रकृति के गुणों को अपना गुण मानने का भ्रम छोड़ देता है।

कपिल ने प्रकृति से उत्पन्न आठ भाव बताए हैं—धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य। इन आठ में से केवल ज्ञान ही ऐसा तत्व है, जो आत्मा को बंधन से मुक्त करता है; शेष सभी प्रकृति द्वारा निर्मित बंधन के कारण बनते हैं। ज्ञान होने पर पुरुष जान लेता है कि वह प्रकृति का कर्ता, भोक्ता या बदलने वाला तत्व नहीं है, बल्कि शुद्ध चेतन साक्षी है। यही विवेकज्ञान का चरम रूप है।

विवेकज्ञान कैसे उत्पन्न होता है, यह सांख्य एक राजपुत्र के कथानक द्वारा समझाता है। एक राजपुत्र बचपन में बिछुड़कर एक शबर के घर पलता है। अज्ञानवश वह स्वयं को शबर-पुत्र मानता है। बाद में राजा का मंत्री उसे ढूँढकर बताता है कि तू शबर-पुत्र नहीं, बल्कि राजा का पुत्र है। मंत्री के उपदेश मात्र से उसका भ्रम दूर हो जाता है और वह अपने वास्तविक स्वरूप—राजपुत्र—को पहचान लेता है। इस कथा के माध्यम से सांख्य यह समझाता है कि आत्मा भी शरीर, इंद्रियों और प्रकृति के धर्मों को ही अपना धर्म समझ लेती है। किंतु योग्य शिक्षक के तत्वोपदेश से उसका अज्ञान मिटता है और वह समझ लेता है कि वह प्रकृति का

नहीं, बल्कि शुद्ध, स्वतंत्र और मुक्त चेतन पुरुष है।

सांख्य-दर्शन त्याग और वियोग के सिद्धांत को अत्यंत सरल और मार्मिक कथाओं द्वारा समझाता है। 'श्येन' अर्थात् बाज के दृष्टान्त के माध्यम से यह कहा गया है कि संसार का सुख हमेशा दु:ख से मिला-जुला रहता है। एक आख्यायिका के अनुसार, एक व्यक्ति शिकार पर गया और उसे एक असहाय बाज का बच्चा मिला। उस व्यक्ति ने करुणा से प्रेरित होकर उसे घर उठा लाया, पाला-पोसा, और जब वह उड़ने योग्य हो गया, तब उसे जंगल में छोड़ दिया। श्येन अब स्वतंत्र हो जाने के कारण प्रसन्न था, क्योंकि बन्धन उसके स्वभाव के विरुद्ध था। परंतु साथ ही वह अपने पालक व्यक्ति से वियोग होने के कारण दु:खी भी था। इस सरल कथा के माध्यम से सांख्य हमें यह बोध कराता है कि संसार में सुख और दु:ख दोनों एक-दूसरे से अविभाज्य हैं। जहाँ सुख है, वहीं वियोग, परिवर्तन और क्षय के कारण दु:ख भी अनिवार्य है। इसलिए सांख्य यह निष्कर्ष देता है कि इस संसार में ऐसा कोई साधन नहीं—ना अतीत में था, ना भविष्य में होगा—जो केवल सुख को ग्रहण कर ले और दु:ख को अलग कर दे। इससे केवल एक उपाय निकलता है—सुख और दु:ख दोनों का त्याग। यही वास्तविक शांति का मार्ग है, जो आत्मज्ञान के उदय से प्राप्त होता है।

श्येन का एक दूसरा रूपक भी सांख्य-ग्रंथों में मिलता है, जो त्याग के महत्व को और स्पष्ट करता है। जब श्येन अपनी चोंच में कोई खाद्य पदार्थ पकड़े होता है, तब उससे अधिक शक्तिशाली पक्षी उस पर टूट पड़ते हैं और उस खाद्य को छीन लेते हैं। छिन जाने का दु:ख तो होता ही है, पर उससे भी अधिक दु:ख संघर्ष में लगी चोटों का होता है। यदि श्येन पूर्व ही से खाद्य का त्याग कर दे, तो न संघर्ष होगा, न छिन जाने की पीड़ा। सांख्याचार्यों ने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि परिग्रह ही दु:ख का मूल है। चीजों को पकड़कर रखने की वृत्ति मनुष्य को भय, चिंता, संघर्ष और असुरक्षा से बांधे रखती है। इसके विपरीत त्याग—चाहे वह वस्तु का हो या विषयों का—मन को शांति प्रदान करता है। जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को घटा देता है और अभाव के भय से मुक्त हो जाता है, तब वह न बाहरी संघर्ष से पीड़ित होता है, न ही हानि के भय से।

त्याग की इस भावना को सांख्य एक और रूपक द्वारा सुदृढ़ करता है—साँप और उसकी केंचुली। साँप जब अपनी पुरानी त्वचा को त्याज्य समझकर छोड़ देता है, तो उसके मन में उस त्यक्त त्वचा के प्रति कोई आसक्ति नहीं रहती। वह उसे पुन: ग्रहण करने की इच्छा नहीं करता। इसी प्रकार जो साधक मोक्ष का इच्छुक है, उसे भी प्रकृति के विषयों—जो अनेक जन्मों से भोगे और झेले जा चुके हैं—को हेय मानकर त्यक्त कर देना चाहिए। इन विषयों का त्याग ही ज्ञानमार्ग को प्रशस्त करता है और पुरुष को प्रकृति के बंधन से मुक्त करता है।

कुछ व्याख्याकार इस रूपक की एक भिन्न व्याख्या देते हैं, जो मनुष्य की मोहवृत्ति पर प्रकाश डालती है। उनके अनुसार, साँप यद्यपि अपनी केंचुली छोड़ देता है, परंतु उसके प्रति उसका मोह बना रहता है। वह उसे धूल और मिट्टी में पड़ा हुआ देखकर संतप्त होता है, और उसके समीप इधर-उधर मंडराता रहता है। इसी के अवसर पर सपेरा उसे पकड़ लेता है और वह बंधन में पड़ जाता है। इस प्रकार केंचुली को न छोड़ पाने का मोह अंतत: उसके संकट का कारण बनता है। इस रूपक द्वारा यह सिखाया गया कि जो व्यक्ति त्याग तो कर देता है, परंतु मन में अभी भी ममता और आसक्ति बनी रहती है, वह किसी न किसी रूप में पुन: बंधनों में फँस जाता है। वास्तविक त्याग वह है जो मन की गहराई से उपजता है, जिसमें साधक विषयों के प्रति मोह को पूर्णत: छोड़ देता है।

सांख्य और योग-दर्शन में यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए केवल सही

कार्य करना पर्याप्त नहीं है; बल्कि उन साधनों के विषय में अत्यधिक चिन्तन करना, जो साधनभूत नहीं हैं, मन को विषयों की ओर प्रवृत्त करता है और ज्ञानार्जन में बाधा डालता है। भले ही कोई कर्म पुण्य और उत्तम क्यों न हो, यदि उसका लगातार स्मरण या चिन्तन आत्मा के वैराग्य को क्षीण करता है, तो यह बंधन का कारण बन सकता है। इसी सन्दर्भ में भरत नामक राजर्षि का उदाहरण दिया गया है।

पुराणों के अनुसार, सतयुग में भरत नामक राजर्षि आत्मज्ञानी और जीवन्मुक्त था। एक बार उसने जंगल में देखा कि एक हरिणी ने बच्चा जनम दिया है और वह मरणासन्न स्थिति में है। भरत के मन में तीव्र करुणा उत्पन्न हुई और उसने उस हरिण शावक का पालन-पोषण करना प्रारंभ किया। वह उसकी इच्छाओं और क्रियाओं के अनुसार स्वयं को ढालने लगा, खिलाता, पिलाता और उसकी देखभाल में संलग्न हो गया। परंतु उसकी यह आसक्ति इतनी गहरी हो गई कि मृत्यु समय में भी उसका ध्यान उस शावक पर ही लगा रहा। परिणामस्वरूप वह मुक्त नहीं हो सका और तीव्र वासनाओं के प्रभाव में हरिण देह में जन्म लेने को बाध्य हुआ। इस दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि अच्छे और पुण्यपूर्ण कार्य भी यदि योगमार्ग या आत्मज्ञान के साधन नहीं हैं, तो उनका अत्यधिक स्मरण या चिन्तन योगी के लिए बन्धन का कारण बन सकता है। अत: योगमार्गी को केवल वही कार्य या चिन्तन करना चाहिए जो उसके मुक्तिपथ के अनुकूल हो।

सांख्य सूत्रों में पिंगला नामक वेश्या की कथा से भी समान शिक्षा दी गई है। पिंगला अपने प्रणयी की प्रतीक्षा में लगातार जागती रहती, यह आशा करती रहती कि वह अब आएगा। लगातार आशा और प्रतीक्षा से उसकी रातें कटतीं और वह अत्यधिक दु:ख भोगती। अनेक बार इसी अवस्था का अनुभव होने पर उसके हृदय में खेद और आत्मावलोकन उत्पन्न हुआ। धीरे-धीरे उसने समझ लिया कि यह कार्य उचित नहीं है और उसने इस प्रकार की आशाओं का परित्याग किया। परिणामस्वरूप उसका मन शांत हुआ और उसने अब पूरी रात विश्राम किया। इस कथा के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया कि आशाओं और आसक्तियों से भरे चित्त में ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। जिस प्रकार गंदे जल में प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दिखता, उसी प्रकार विकृत और आसक्त चित्त में आत्मज्ञान नहीं उभर सकता।

निष्कर्षत: सांख्य-दर्शन के अनुसार आत्मज्ञान और मोक्ष के लिए त्याग, वैराग्य और अनासक्ति अत्यंत आवश्यक हैं। संसार का सुख हमेशा दु:ख से मिश्रित है और परिग्रह, आसक्ति, मोह आदि बंधनों का कारण बनते हैं। वेदों, पुराणों और सूत्रों में भिन्न-भिन्न दृष्टान्तों—जैसे श्येन, सांप की केंचुली, राजर्षि भरत और पिंगला—के माध्यम से यह शिक्षा दी गई है कि विषयों, वस्तुओं या कर्मों का अत्यधिक चिन्तन या आसक्ति मन को बाधित करती है और बंधन में डालती है। जो व्यक्ति इच्छाओं, आशाओं और परिग्रह से मुक्त हो जाता है, वही शुद्ध चेतनस्वरूप में स्थित होकर वास्तविक शांति और मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. रामनाथ वेदालंकार, वेदों की वर्णन-शैलियाँ, द्वितीय संस्करण, श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धार्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, 2004*
2. *पं. उदयवीर शास्त्री, सांख्यदर्शनम् (विद्योदयभाष्यसहितम्), विरजानन्द वैदिक संस्थान, गाजियाबाद, 1976*
3. *श्येन आख्यायिका के लिए देखें-महाभारत शान्तिपर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना, 1932*
4. *विष्णुपुराण, महर्षि वेदव्यास, श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, प्रथम संस्करण, 1910*
5. *महाभारत, शान्तिपर्व, चित्रशाला प्रेस, पूना, 1932*